प्रेमचन्द की कहानियों में दलित शोषण के अनेकविध आयाम

डॉ0 आर0 के0 मेहरा
डी0 लिट0
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी–विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
अम्बाला छावनी।

भारतीय समाजिक व्यवस्था में दलित सदैव शोषण का शिकार रहे हैं। दलित का अभिप्राय यहॉ उस जाति विशेष के व्यक्तियों से है जिन्हें भारतीय समाज में अन्य जातियों की तुलना में सामाजिक रूप से कनिष्क का दर्जा प्रदान किया गया है। 19 वीं शताब्दी तक इन जातियों के लिए 'शूद्र', 'अछूत' शब्द का प्रयोग होता था। महात्मा गांधी जी ने इन्हें 'हरिजन' कहा। 'हरिजन' नाम देने से भी दलित जाति के व्यक्तियों के लिए भारतीय समाज में सामाजिक दर्जे में कोई परिवर्तन नहीं आया। समय के साथ व बदलती परिस्थितियों के कारण भले ही परिवर्तन आया हो परन्तु मानसिक रूप में आज भी भारतीय समाज में दलित दोहरे शोषण की त्रासदी का शिकार हो रहे हैं–एक उनका गरीब होना दूसरे दलित होना।

प्रेमचन्दयुगीन भारतीय समाज धर्म, जाति, सम्प्रदाय आदि के नाम पर विभाजित था। मानवाधिकार के लिए संघर्ष करने वाले प्रेमचन्द ने देखा कि करोड़ों अछूत न केवल उपनिवेशवादी सामंती शोंषण से पीड़ित है, वे हिन्दुओं के सामाजिक भेदभाव और अलगाव के भी शिकार हैं। यद्यपि कुछ महापुरुष और कुछ सामाजिक संस्थाएं इस विभाजन की खाई को पाटने में जुटे थे, उनके सद्प्रयासों से समाज के लोगों में कुछ चेतना आ चुकी थी। आजादी के आंदोलन के उभार की प्रक्रिया में भी अछूतों के साथ बराबरी के सलूक की भावना जोर पकड़ने लगी। परिणाम दलितों में मुक्ति की व्यग्रता भी बढ़ी।

प्रेमचन्द जी ने लगभग 300 कहानियों की रचना की, जिनमें इनका ध्यान मध्यवर्ग, किसान, मजदूर, नारी आदि के सामाजिक जीवन की विविध समस्याओं पर ही केन्द्रित रहा है। बेशक प्रेमचन्द की कुछ कहानियां विशेषकर दलितों के जीवन और उनकी लाचारी से सम्बन्धित लिखी और वे कहानियां आज प्रासंगिक भी नहीं है। उन्हें पढ़ने से लगता है कि हम गुजरे जमाने के किस्से पढ़ रहे हैं। लेकिन वकील, बुद्धिजीवी, राज्याधिकारी अथवा कर्मचारी अपने–अपने तरीके से आज भी शोषणमूलक कार्य में हिस्सा लेते हैं। वे बड़ी–बड़ी बातें करते हैं, पर वक्त आने पर अवसरवाद का परिचय देते हैं। प्रेमचन्द ने ऐसे उन्नयनशील चरित्र की पहचान करते हुए **'ब्रह्म का स्वांग'** कहानी में एक वकील के बहाने शिक्षित वर्ग के अवसरवादी एवं सुविधावादी चरित्र को बड़ी समझदारी से नंगा किया है। इस कहानी का नायक वकील जो अपनी पत्नी को समानाधिकार, बराबरी, प्रेम, सेवा तथा आधुनिक जीवन से सम्बन्धित उपदेश देता है और दकियानूसी खयालातों के विरुद्ध आवाज बुलंद करता है। लेकिन जब उनकी पत्नी वृंदा उनके आदर्शों पर चलते हुए अपनी महरी के साथ मिल– जुलकर काम करती है। उसे सर्दी में ठिठुरते देख ऊनी चादर दे देती है। ननद की विदाई के अवसर पर धर पर आई ऊंचे घराने की स्त्रियों और दलित स्त्रियों को वह एक ही चटाई पर बैठने को कहती है। कंगालों को जूठन खाता देखकर, घर की साफ मिठाइयां–पूरियां उन्हें सौंप देती है तो ऐसी हरकतें देखकर आदर्श की बातें करने वाले वकील साहब कुहराम मचा देते हैं। वकील साहब का अवसरवादी एवं सुविधावादी चरित्र स्वयं द्वारा कही गई बात से और स्पष्ट हो जाता है–''मेरे पास एक चमार अपने जमींदार पर नालिश करने आया था। निस्संदेह जमींदारों ने उसके साथ ज्यादती की थी, लेकिन वकीलों का काम मुफ्त में मुकदमें दायर करना नहीं। फिर एक चमार के पीछे एक बड़े जमींदार से बैर करूँ! ऐसे तो वकालत कर चुका।''

'ठाकुर का कुआं' में पानी की गुलामी की कथा है। बीमार व प्यासे जोखू को गंदला पानी पीते देखकर उसकी पत्नी गंगी बदबूदार पानी नहीं पीने देती और ठाकुर के कुएं से एक घड़ा पानी चुराने चल पड़ती है। ''रात के नौ बजे थे।'..... गंगी जगत की आड़ में बैठी मौके का इंतजार करने लगी। इस कुऍ का पानी सारा गॉव पीता है। किसी के लिए रोक नहीं; सिर्फ ये बदनसीब नहीं भर सकते।

गंगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबंदिया और मजबूरियों पर चोटें करने लगा–हम क्यो नीच है और ये लोग क्यों ऊॅचे है? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं। यहॉ तो जितने हैं, एक–से–एक छॅटे हैं? चोरी ये करें, जाल–फरेब ये करें झूठे मुकद्दमें ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गडरिये की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया।.....किस बात में हैं हमसे ऊॅचें। मुहॅ में हमसे ऊॅचे हैं। हम गली–गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊॅचे हैं, हम ऊॅचे है! कभी गॉव में आ जाती हूॅ, तो रसभरी ऑखों से देखने लगते हैं।.....परन्तु घमंड यह कि हम ऊॅचे हैं।''

कुऍ पर आयी ऊॅचे घर की दो औरतों की बातचीत से पता चलता है कि वे कितनी गुलाम हैं। वे एक–दूसरी से अपने मर्दों की शिकायत करती हैं, जबकि गंगी न केवल एक हद तक आजाद औरत है, बल्कि उसका अपने मर्द से प्रेम और बराबरी का संबंध है। इसीलिए जान जोखम में डालकर भी वह ठाकुर के कुऍ पर पानी लेने जाती है।''कलेजा मजबूत करके घड़ा कुऍ में डाल दिया और ज्योंहि घड़ा कुऍ के मुहॅ तक आया, गंगी झुकी कि घड़े को पकड़कर जगत पर रखे कि एकाएक ठाकुर साहब का दरवाजा खुल गया। शेर का मुॅह इससे अधिक भयानक न होगा।'' इन पंक्तियों में जातिभेद की

बर्बरता है।गंगी पकड़े जाने के भय से भागी जा रही थी,''घर पहुँचकर देखा कि जोखू लोटा मुँह से लगाए वही मैला गंदा पानी पी रहा था।''

सदृगति' में हिन्दू समाज में धर्म के नाम पर व्याप्त कुरीतियों का व्यंगयात्मक चित्रण किया है। इस कहानी में तत्कालीन सामाजिक विषमता और धार्मिक अन्याय के कारण दलितों पर होने वाले शोषण का मार्मिक चित्रण है। दुखी चमार अपनी बिटिया की सगाई का सगुन निकलवाने के लिए बड़ी साध से, सीधा का बंदोबस्त कर, घास का एक गट्ठा लेकर पंडित घासी राम के घर जाता है। घर आए दुखी चमार को देखकर पंडित जी ''श्रीमुख से बोले–आज कैसे चला रे दुखिया?

दुखी ने सिर झुकाकर कहा–बिटियां की सगाई कर रहा हूँ महाराज। कुछ साइत–सुगन विचारना है। कब मर्जी होगी?

घासी–आज मुझे छुट्टी नहीं हॉ सॉझ तक आ जाऊँगा।

दुखी– नहीं महाराज, जल्दी मर्जी हो जाए। सब सामान ठीक कर आया हूँ। यह घास कहॉ रख दूँ?

घासी– इस गाय के सामने डाल दे।'' पंडित घासी राम मौके का फायदा उठाकर दावाजा साफ कराने, गोबर लीपने, लकड़ी फाड़ने और खलिहान से चार खंची भूसा लाकर भुसोल में डालने का हुक्म सुना देते हैं।

''दुखी फौरन हुक्म की तामील करने लगा। द्वार पर झाड़ू लगाई, बैठक को गोबर से लीपा तब बारह बज गए। पंडित जी भोजन करने करने चले गए। दुखी ने सुबह से कुछ नहीं खाया था। उसे भी जोर से भूख लगी; पर वहॉ खने का क्या धरा था। घर यहॉ से मील–भर था।वहॉ खाने चला जाए तो पंडित जी बिगड़ जाए। बेचारे ने भूख दबाई और लकड़ी फाड़ने लगा।.....चिलम पीने के लिए आग मांगने के लिए

घर के भीमर कदम रखते ही पंडिताइन क्रुद्ध हो गई। बेचारा भूखे पेट वह दिन भर बेगार करता रहा। आखिर लकड़ी फटते ही दुखी के हाथ से कुल्हाड़ी छूटकर गिर पड़ी। इसके साथ वह भी चक्कर खाकर गिर पड़ा।'' प्राण निकल गए, बिटिया की सगाई के लिए सिर्फ सगुन निकलवाने की साध में।

चमरौने में खबर पहुँची, तो गोंड़ ने सबसे कहा– ''खबरदार, मुर्दा उठाने मत जाना। अभी पुलिस की तहकीकात होगी। दिल्लगी है कि एक गरीब की जान ले ली। पंड़ित जी होंगे, तो अपने घर के होंगे।''

चमरौने से कोई आदमी लाश उठाने नहीं आया।''पंडित जी ने चमारों को धमकाया, समझाया, मिन्नत की; पर चमारों के दिल पर पुलिस का रोब छाया हुआ था, एक भी न मिनका।'' हॉ दुखी की स्त्री और बिटिया दोनों हाय–हाय करती वहॉ चली। दुखी की स्त्री और बिटिया दोनों रोकर बेहाल हो रही थी,उधर लाश से दुर्गंध उठ रही थी। पंडित जी ने रस्सी का फंदा बनाकर मुर्दे के पैर में डाला और ''रस्सी पकड़कर लाश को घसीटता हुआ गॉव से बाहर घसीट ले गया।वहॉ से आकर तुरंत स्नान किया,दुर्गा पाठ पढ़ा और घर में गंगाजल छिड़का।उधर दुखी की लाश को खेत में गीदड़ और गिद्ध, कुत्ते और कौए नोच रहे थे।''

'कफन' का कथा–परिवेश बुधिया की प्रसव –वेदना के सम्मुख बाप–बेटे की मर्मभेदी लाचारी को खोलकर रख देता है। घीसू और माधव अपनी आलसियता के कारण बाप–बेटे न होकर साथ–साथ रहते दो आदमी भर थे। परस्पर अविश्वास की स्थिति के कारण दोनों में कोई भी कहराती बुधिया को देखने नहीं जाता, कि कहीं आलुओं का बड़ा भाग दूसरा न चट कर जाए। बुधिया दोनों बेगैरतों का दोजख भरती थी, कमाकर खिलाती थी।''वही औरत आज प्रसव–वेदना से मर रही थी और ये दोनों शायद इसी इंतजार में थे कि वह मर जाए, तो आराम से सोये।''इस अमानवीयता का क्या कारण है? यह दो व्यक्तियों की निजी अमानवीयता है या पूरी समाज–व्यवस्था की।

प्रेमचन्द खुद ही इस कहानी में स्पष्ट करते हैं–''जिस समाज में रात–दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहॉ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना अचरज की बात न थी।''इसी मनोवृत्ति के कारण घीसू और माधव दोनों नैतिक दृष्टि से बिल्कुल गिर गए। वे देख चुके थे कि किसान घोर श्रम करता है पर उसे कुछ भी नहीं मिलता, जबकि जमींदार कुछ नहीं करता और सब कुछ पा लेता हैं। उन्होंने अनुभव किया कि भूखों ही मरना है तो फिर क्यों अपने हाड़ पेलें। अन्त में वे यह सोचकर संतोष कर लेते हैं कि कोई उनका शोषण नहीं कर रहा। जीवन के प्रति इसी दृष्टिकोण के कारण वे काहिल, निश्चिन्त और लापरवाह, पशु और हृदयहीन बन जाते हैं।

घीसू और माधव के माध्यम से प्रेमचन्द जहॉ जमींदार–महाजन का मजाक उड़ाते हैं, वहीं धर्मिक पाखंड की भी खिली उड़ाते हैं। बुधिया के मरने से पहले इलाज का एक पैसा कहीं से नहीं मिलता। मरने के बाद वही शोषक–वर्ग कफन के लिए चंदा देकर धमिर्क संस्कारों के प्रति नाटकीय आस्था व्यक्त करता है। खोखली धार्मिकता दवा से अधिक कफन को महत्त्व देती है। इसी बहाने शोषक–वर्ग अपनी छद्म मानवता प्रदर्शित करने का अवसर पा जाता है। कफन का पैसा लेकर घीसू और माधव का शराबखाने में घुस जाना धर्मिक आदर्शों पर चोट है। यह सामंतवादी व्यवस्था का प्रतिकार है। निकम्मा रहकर वे शोषक वर्ग को अपनी सरलता और निरीहता का बेजा फायदा उठाने नहीं देते। कफन के पैसे से शराब पीकर वे धर्माडंबर के प्रति विद्रोह करते हैं। वे जानते हैं कि वही पाखंडी वर्ग बुधिया के लिए फिर कफन के पैसे जुटाएगा, हॉ, अबकी बार रुपये उनके हाथ न देगा।

बुधिया ने स्वयं मरकर घीसू और माधव को एक ट्रैजिक तृप्ति से भर दिया। कफन का पैसा लेकर वे शराबखाने जाते है, इसलिए कि ''थोड़ी देर के लिए यह भूल जाते हैं कि वे जीते हैं या मरते हैं! या न जीते हैं न मरते हैं।'' यह आदमी की वह कारुणिक स्थिति है, जिसमें न वह अच्छी तरह जी पाता है, न मर पाता है। वह विलगाव के तनाव में झनझनाता रहता

है। व्यर्थता का यह बोध वस्तुवाद के नजदीक ले जाता है, क्योंकि घीसू और माधव कफन के रूप में सामंती–मूल्यों और जीवन के प्रति भाववादी दृष्टि की व्यर्थता का अनुभव कर लेते हैं।

कई आलोचकों ने 'कफन' की आलोचना अस्तित्ववादी दर्शन के आधार पर की है। डॉ0 बच्चन सिंह के मत से–''डी–ह्यूमनाइजेशन की चरम परिणति, व्यर्थता का चरम बोध वहां होता है, जहां उनका बोध नहीं होता। मधुशाला वह जगह है, जहां बोधहीनता का बोध होता हैं। इस बोध को प्रेमचन्द ने नाटकीय क्रिया– व्यापारों द्वारा अभिव्यक्त किया हैं। ''घीसू और माधव बोधहीनता का बोध नहीं करते, बल्कि नशे में उनकी संवेदना अधिक बौद्धिक होने लगती है। उनमें विलगावग्रस्त मानवीय अस्तित्व की बेचैनी पैदा होती है। अस्तित्ववादी इस व्यवस्था के शोषण –तंत्र की शिनाख्त नहीं करते। घीसू और माधव करते हैं। माधव के पूछने पर घीसू कहता है, '' किसी को सताया नहीं; किसी को दबाया नहीं मरते–मरते हमारी जिंदगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गयी। वह न बैकुंठ जायेगी, तो क्या ये मोटे–मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धोने के लिए गंगा नहाते और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।'' वे 'ठगिनी क्यों नैना झमकावे' गाते हुए जब गिर पड़ते है, ऐसा नहीं लगता कि उन्हें अपनी बहू अथवा बीबी से मतलब नहीं था। उनमें जीने की तीव्र भूख थी, पर वे सामाजिक–आर्थिक विषमता की चपेट में फंसकर कामचोर बने हुए थे।

'कफन' के घीसू और माधव के समीप आकर अगर प्रेमचन्द का यर्थाथवाद अपने प्रखर आलोचनात्मक रूप में उभरता है, तो आम आदमी के स्वप्नों की झलक भी स्पष्ट हो उठती है।राजेन्द्र यादव ने कहा है–'कफन' के पात्र विलगावग्रस्त जीवन की उस व्यापक संवेदना को व्यक्त करते हैं,जो बौद्धिकता और वर्ग जागरूकता से समन्वित है।उनकी अमानवीयता समाज–व्यवस्था की अमानवीयता की उपज है,जिसके कारण वे विलगाव का अनुभव करते हैं–अपने श्रम से, अपने आप से, अपने पारिवारिक और मानवीय जीवन से। प्रत्यक्ष रूप से वे किसी जमींदारी–महाजन से संघर्ष करते नहीं दिखते, फिर भी वे पाठक में इस विलगाव के प्रति व्यापक राजनीतिक विक्षोभ भर देते हैं। वे खुद नशे में रहते हैं, किन्तु बहुतों का नशा काफूर कर देते हैं।

प्रेमचन्द जी यदि इस कहानी में '' चमारों का कुनबा था और सारे गॉव में बदनाम'' वाक्य में चमारों के स्थान पर किसी सवर्ण जाति का कुनबा लिखते तो पूरे हिन्दू समाज का नशा काफूर हो जाता। 'कफन' को एक आधुनिक कहानी मानते हुए भी इन्द्रनाथ मदान को लगा कि यह '' कहानी जिस तथ्य को उजागर करती है वह जीवन के तथ्य से मेल नहीं खाता।'' कोई भी आदमी, चाहे जितना गरीब हो, अपनी बीबी व बहू के मरने पर माधव और घीसू जैसा आचरण नहीं कर सकता। कुछ लोगों का ऐसा ख्याल होता है कि गॉव में यह सब संभव नहीं है। जो आलोचक कहानी को उसकी वैचारिक संवेदना से अलग कर सिर्फ कथावस्तु और घटना के धरातल पर परखते हैं, उन्हें 'कफन' में अवास्तविकता ही नजर आएगी। 'कफन' को कहानी के पुराने प्रतिमान से नहीं परखा जा सकता, क्योंकि यह कहानी गरीब आदमी की अस्तित्व– चेतना के माध्यम से, भारत के वर्ग–विभाजित समाज का नग्न यथार्थ एक नए कथारूप में प्रस्तुत करती है।

'दूध का दाम' का मंगल बाबू साहब के लड़के सुरेश को घोड़ा बनकर ढोने से इन्कार कर देता है और खेल में बराबर का हिस्सा मांगते हुए कहता है–'' मैं कब कहता हूँ कि मैं भंगी नहीं हूँ, लेकिन तुम्हें मेरी मॉ ने दूध पिलाकर पाला है। जब तक मुझे भी सवारी करने को नहीं मिलेगी, मैं घोड़ा नहीं बनूंगा। तुम लोग बड़े चघड़ हो। आप तो मजे से सवारी करेंगे और मैं घोड़ा ही बना रहूंगा।'' वह भगा दिया जाता है। तब वह अपने अभिन्न साथी टामी से अपनी व्यथा और भूख की आग के बारे में कहता है। उसके साथ काफी देर तक भटक कर अंततः उसी घूरे पर आ खड़ा होता है, जहॉ भोजन फेंका का जाता है। टामी एक कुत्ता है।

संभवतः प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में व्यंग्य के साथ दलित जीवन के शोषण का संवेदनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। सामर्थ्यवान वर्ग जरूरत पड़ने पर दलित मॉ के दूध से अपने बच्चे को पालता है, पर उस मॉ के अपने बच्चे जूठे भोजन के लिए भी तरसते हैं। प्रेचन्द ने दलितों की दीन–हीन व्यवस्था का चित्रण ही नहीं किया, उनकी उद्विग्नता और प्रतिरोध की भावना को भी उभारने का प्रयत्न किया है।

'घासवाली' की मुलिया बहुत सुन्दर थी लेकिन दलित जाति की होने के कारण एक बड़ा किसान चैन सिंह उसे परेशान करने लगा। मुलिया अपने पति महावीर को छोड़कर किसी पर पुरुष को अपने मन में नहीं लाती थी। एक दिन चैन सिंह ने उसे ज्यादा परेशान किया तो मुलिया ने उसे डाटते हुए कहा–''क्या समझते हो कि महावीर चमार है,तो उसकी देह में लहू नहीं है? मेरा रंगरूप तुम्हें भाता है। क्या घाट किनारे मुझसे कहीं सुन्दर औरतें नहीं घूमा करती?... मगर वहां तुम न जाओगे, क्योंकि वहां जाते तुम्हारी छाती दहलती है। मुझसे दया मांगते हो, इसलिए न कि मैं चमारिन हूँ, नीच जाति की हूँ और नीच जाति की औरत जरा–सी घुड़की–धमकी या जरा –सी लालच से तुम्हारी मुट्ठी में आ जायेगी?''

प्रेमचन्द ने इन कहानियों में दलित के कष्टों और पीड़ाओं के चित्रण में जिस संयम से काम लिया है, उससे ये कहानियां सामाजिक अन्याय और आर्थिक शोषण के विरुद्ध एक शक्तिशाली जिहाद बन जाती हैं। सदियों के अपमान ने उनके गर्व, भावुकता और मानवीय गौरव की चेतना का नाश कर दिया है। इस वर्ग –भेद ने दलितों को कुत्तों से भी बदत्तर बना दिया है। यहॉ तक कि ठोकर मारने पर कुत्ता भी काटता है परन्तु दलित सवर्णों के उन्हीं पैरों को चूमता है जो उन्हें कुचलते हैं। निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के समय में तो भारत की ग्राम्य–व्यवस्था में दलितो की स्थिति शोषकमूलक थी ही, कानूनी अधिकार प्राप्त करने के उपरांत भी आज भारत की ग्राम्य–व्यवस्था में दलित सामाजिक दृष्टि से हीन समझे जाते हैं।

संदर्भ :

1. सं0 डॉ0 लाल सिंह चौधरी प्रेमचन्द की प्रतिनिधि कहानियां
2. सं0 भीष्म साहनी, प्रेमचन्द, प्रतिनिधि कहानियां
3. शंभुनाथ, प्रेमचन्द का पुनमूल्यांकन
4. डॉ0 इन्द्रनाथ मदान, प्रेमचन्द : एक विवेचन